THE TIMES OF INDIA

Date: 27-03-17

Unruly Gaikwad

Politicians are not above the law and Air India is not their personal property

Shiv Sena MP Ravindra Gaikwad's alleged assault on an Air India staffer last week has led to a nationwide outcry – against how politicians with a bloated sense of entitlement expect to be treated as much more special than the public they serve. Delhi Police has filed an FIR against Gaikwad under sections 308 and 355 of IPC. It's very important that the police probe be expeditious, rigorous and free from political interference. A clear message must go out that no politician can flout the country's rules or demand special services at will, and with violence.

After the incident, the unapologetic Sena MP from Osmanabad could be seen on TV boasting about how he hit the airline employee with his sandal 25 times. It seems he was angry because he had been made to fly in an all-economy flight from Pune to Delhi. Whatever the merits of his complaint, Gaikwad should know he has no right to assault anyone. Afterwards, IndiGo, Jet Airways, SpiceJet, GoAir, AirAsia and Vistara closed ranks with Air India to stop Gaikwad from flying on their aircraft. He was forced to travel back to Pune by train.Government must respect that the airline industry has the right to safeguard its passengers and crew. After all the Union civil aviation ministry is working on creating institutional mechanisms to check undesirable flight behaviour or unruly passengers. Current rules of India's aviation regulator DGCA are unclear on the concept of a no-fly list, whereby passengers on such a list can be denied issuance of tickets. The provision that comes closest is section 3 of DGCA's Civil Aviation Requirements, which was invoked by the airlines in the case of Gaikwad. Under this, passengers who are likely to be unruly can be off-loaded or refused embarkation if they pose a threat to the safety and security of the flight, fellow passengers or staff while on board aircraft.

The more it has been fed taxpayers' money the more Air India has allowed elected representatives to treat it as their personal handmaiden. The more they throw their weight about, the more the remaining passengers shun Air India. It's unusually bold of it to send a message that it will treat politicians the same as the people they represent. Government must recognise that only this kind of independent thinking can get the airline out of its dismal financial state.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 27-03-17

Making Ganga and Yamuna a legal person can help

Last week, the Uttarakhand high court ruled rivers Ganga and Yamuna to be legal persons, in a public interest case on pollution. When any person commits bodily violence on another person, it is a crime that the state can take cognizance of, without waiting for a complaint. So, after this judicial pronouncement, any harm done to these two giant rivers of North India can become a cognizable offence. The state can initiate criminal proceedings on its own, without waiting for a complaint by some environmentalist. This is a welcome development, given that Yamuna has been declared a dead river and the waters of the Ganga are carcinogenic in some parts, given the volumes of effluents discharged into the river.The Uttarakhand high court was following the example of a recent New Zealand law that made that country's third longest river, Whanganui, a legal person. This law followed in the wake of a 2014 law that made an entire forested slope, TeUrewera, held sacred by the Maoris, a legal person. Of course, it is not just live humans who are persons in a legal sense — anywhere in the world, companies, trusts, etc and juridical persons, who can sue and be sued. In India, thanks to a colonial convention, even gods are juridical persons.Lord Ram was a party to the Ayodhya dispute in the Allahabad high court and was represented by Union minister Ravishankar Prasad in his capacity as a lawyer. In India, the tradition has been to deem rivers to be feminine. In Mahabharata, Ganga was married to Shantanu and gave birth to the son who grew up to become Bhishma, the most accomplished warrior of his time, who bowed to convention and stood mute witness to vile acts of treachery and dishonour by his grand-nephews.This feminine attribute perhaps plays a role in Indians doing to rivers that are wont to go through lonely stretches unattended, clad, primarily, in their beauty, trusting and without a care about the time of the day, what many of them feel compelled to do to women in similar circumstances. Indian men have to learn to treat rivers and women a whole lot better. The law might help.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 27-03-17

जवाबदेही से दूरी

गत सप्ताह लोक सभा ने वित्त विधेयक 2017 को मंजूरी दे दी। अब यह राज्य सभा के समक्ष जाएगा। लेकिन चूंकि यह एक धन विधेयक है इसलिए उच्च सदन इसे न तो ठुकरा सकता है और न ही कोई संशोधन करने का दबाव डाल सकता है। सरकार ने इसमें कुछ अतिरिक्त सुझावों का प्रस्ताव रखा है जो कुल 40 से अधिक मौजूदा कानूनों में हो रहे बदलाव के सिलसिले की एक कड़ी है। इनमें से कई संशोधन ऐसे कानून पारित करने से संबंधित हैं जहां मसले की प्रकृति वित्तीय नहीं है। ऐसे कानूनों के लिए राज्य सभा की मंजूरी ली जानी चाहिए। यह देश की संवैधानिक व्यवस्था का आधार है। लेकिन उनके लिए धन विधेयक की राह चुनकर सरकार ने इस आवश्यकता को दरकिनार कर दिया है। यह सरकार द्वारा धन विधेयक का दुरुपयोग कर राज्य सभा से बचने का एक और उदाहरण है। राज्य सभा में भाजपा और उसके सहयोगी दलों को बहुमत नहीं हासिल है। अतीत में सरकार ने इस प्रावधान का इस्तेमाल कर आधार अधिनियम पारित किया था। ऐसा लगता है कि अब उसका इरादा इसका अक्सर प्रयोग करने का है। ऐसा करने से संवैधानिक व्यवस्था पर बुरा असर ही नहीं होगा बल्कि इन नए कानूनों की वैधता पर

भी सवाल खड़े होंगे। वित्त विधेयक 2017 में जो संशोधन सुझाए गए हैं उनमें कई अत्यंत बहसतलब मुद्दों से जुड़े हैं। उदाहरण के लिए राजनीतिक दलों को कारोबारी चंदे से संबंधित कई प्रावधानों में अहम बदलाव किए गए हैं। इसका सरकारी वित्त से क्या लेनादेना है यह स्पष्टï नहीं है लेकिन चुनाव सुधार से यह जरूर जुड़ा है। धन विधेयक का चुनाव सुधार से भला क्या संबंध? इससे पहले राजनीतिक दलों को कंपनियों का चंदा उनके शुद्ध लाभ के 7.5 फीसदी तक सीमित किया गया था। यह पिछले तीन साल के औसत के समान था। इससे भी बुरी बात यह है कि यह चंदा आखिर कहां जा रहा है, यह जानने की जरूरत तक समाप्त कर दी गई है। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत में अब ऐसी व्यवस्था है जहां असीमित, अपारदर्शी राजनीतिक चंदा दिया जा सकता है। संसद में इस पर व्यापक बहस होनी चाहिए थी और विपक्ष को संशोधनों पर चर्चा करने और बदलाव की कोशिश का मौका मिलना चाहिए था जो नहीं मिला। अपील पंचाट की व्यवस्था में बदलाव भी दिक्कतदेह है। वित्त विधेयक 2017 ने कई पंचाटों को बदल दिया है और उनका विलय कर दिया है। उदाहरण के लिए प्रतिस्पर्धा अपील पंचाट जो प्रतिस्पर्धा अधिनियम 2002 के उल्लंघन के मामलों पर निर्णय देता था अब राष्टï्रीय कंपनी कानून अपील पंचाट ने उसका अधिग्रहण कर लिया। यह पंचाट कंपनी अधिनियम से जुड़े विवादों की सुनवाई करता आया है। जाहिर सी बात है कि इन दोनों अधिनियमों का काम और उनका उद्देश्य दोनों अलग हैं। इनके लिए जरूरी विशेषज्ञता भी अलग है। सबसे बुरी बात यह है कि नये संशोधन के तहत सरकार को पंचाट सदस्यों के रोजगार और नियुक्ति की शर्तें निर्धारित करने का अधिकार रहेगा। ऐसा तब है जबकि अक्सर सरकार इन पंचाटों के समक्ष आने वाले मामलों में पक्षकार रहती है। इस व्यवस्था में स्वाभाविक तौर पर दिक्कतें हैं। अद्र्घ न्यायिक संस्थाओं पर सरकारी अधिकारियों का नियंत्रण मूलभूत संवैधानिक सिद्धांतों का उल्लंघन है। इसके बावजूद सरकार ने इसे धन विधेयक के रूप में भेजा। इससे न केवल राज्य सभा की भूमिका को सीमित किया जा रहा है बल्कि लोकतांत्रिक जवाबदेही को भी कमतर किया जा रहा है। लोक सभा अध्यक्ष का यह तय करने का अधिकार अंतिम मान लिया गया है कि धन विधेयक किसे माना जाएगा? अगर यह रवैया लोक सभा अध्यक्ष को अदालती मामलों में घसीटता है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा।

जनसत्ता

Date: 26-03-17

जहां बच्चे उपेक्षित हैं

मानव संसाधन विकास की हमारी परिकल्पना में बच्चों का विकास, बच्चों का स्वास्थ्य और बच्चों का पोषण शामिल नहीं है। 'मानव संसाधन विकास', वास्तव में, 'शिक्षा' का नया नाम है। सब कुछ से वास्ता रखने वाले मानव संसाधन विकास मंत्रालय की राजीव गांधी की परिकल्पना उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही छोड़ दी गई और आज इस नाम का मंत्रालय, पुराने शिक्षा मंत्रालय का ही दूसरा नाम है।

लगता है हम इस सच्चाई को भुला बैठे हैं कि शिक्षा बच्चे के लिए होती है। शिक्षा बच्चे की सारी संभावनाओं को तभी खोल सकती है जब वह सुपोषित और स्वस्थ हो। यह सही है कि हमने बच्चों को शिक्षित करने की खातिर कई पहलकदमियां की हैं, लेकिन उस बच्चे की दशा क्या है जिसे हम शिक्षित करना चाहते हैं और जिससे हम अच्छे नागरिक के रूप में विकसित होने की आशा करते हैं?राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) 2015-16 इस सर्वेक्षण-शृंखला की चौथी कड़ी है। यह सर्वेक्षण देश और प्रत्येक राज्य की आबादी,

स्वास्थ्य और पोषण पर व्यापक जानकारी (तथा आंकड़े) मुहैया कराता है। यह रिपोर्ट कुछ मायनों में उत्साहजनक और कई मामलों में निराशाजनक है।

स्तब्धकारी नतीजे

निश्चय ही, भारत ने आजादी से अब तक मानव विकास के कई मानकों पर उल्लेखनीय प्रगति की है। उदाहरण के लिए, 1947 से, जीवन प्रत्याशा 32 साल से 66 साल और साक्षरता 12 फीसद से 74 फीसद हो गई। कई मानकों पर, स्त्री-पुरुष विषमता कम हुई है। इस प्रगति के बावजूद, हमारे बच्चों की दशा लज्जा का विषय है।राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस) 2015-16 के कुछ महत्त्वपूर्ण संकेतकों पर नजर डालें:एनएफएचएस 2015 एनएफएचएस 2005-06पिछले पांच वर्षों में जन्म के समय लिंगानुपात(बालिकाएं प्रति 1000 बालकों पर) 919 914शिशु मत्यु दर 41 57पांच साल से छोटे बच्चों में मृत्यु दर 50 7412 से 23 महीनों के बच्चों में पूर्ण टीकाकरण (प्रतिशत) 62.0 43.5पांच वर्ष से छोटे बच्चे, जिनका विकास बाधित है 38.4 48.0(जिनका कद उम्र के मुताबिक नहीं है)पांच साल से छोटे बच्चे जो कमजोर हैं 21.0 19.8(जिनका वजन कद के मुताबिक नहीं है) पांच साल से छोटे बच्चे जो अत्यधिक दुर्बल हैं 7.5 6.4 पांच साल से छोटे बच्चे जिनका वजन उम्र के लिहाज से कम है 35.7 42.5 6 से 59 माह के बच्चे जो खून की कमी से पीड़ित हैं 58.4 69.4स्वास्थ्य विज्ञान मानता है कि किसी बच्चे के प्रथम पांच वर्ष ही सामान्यत: यह निर्धारित करते हैं कि बाकी जीवन में उसका स्वास्थ्य और शारीरिक तथा मानसिक विकास कैसा होगा। भारत के बच्चों की दशा कैसी है? दो बच्चों में से एक खून की कमी से पीड़ित है, तीन में से एक का विकास बाधित है और वजन कम है, और पांच में से एक दुर्बल है। इसकी वजहें हैं अपर्याप्त भोजन, अल्प पोषण, खराब पेयजल और साफ-सफाई की बुरी हालत।

खाद्य सुरक्षा की उपेक्षा

संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार घोषणापत्र के बच्चों से संबंधित अधिकारों को मंजूरी देने वाले देशों में भारत भी है। घोषणापत्र के अनुच्छेद 24 (2) में कुछ अन्य बातों के अलावा, यह बात भी शामिल है:"संबंधित देश बीमारियों तथा कुपोषण से लड़ने के लिए उपयुक्त कदम उठाएंगे... जिनमें पर्याप्त पोषक आहार तथा साफ पेयजल मुहैया कराना शामिल है।"राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 'पुसाने वाली कीमतों पर गुणवत्तायुक्त खाद्य की पर्याप्त मात्रा तक पहुंच सुनिश्चित करने के उद्देश्य से' लागू किया गया था। इसमें हर व्यक्ति को प्रतिमाह पांच किलो अनाज देने का वादा किया गया था। गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली माताओं, छह महीने से छह साल तक के बच्चों और कुपोषण से पीड़ित बच्चों के लिए विशेष प्रावधान किए गए। एक साधारण ही सही, पोषण-मानक तय किया गया: विभिन्न श्रेणियों के लिए 500 से 800 कैलोरी और 12 से 25 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन। खाद्य सुरक्षा कानून के क्रियान्वयन पर नजर रखने के लिए हर राज्य में एक सरकारी खाद्य आयोग का गठन कानूनन अनिवार्य किया गया। 21 मार्च तक की स्थिति के मुताबिक, खाद्य सुरक्षा अधिनियम में किए गए वादे अब भी अधर में हैं; और नौ राज्य सरकारों ने खाद्य आयोग का गठन नहीं किया है। इस सूची में महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक जैसे बड़े राज्य भी शामिल हैं और छत्तीसगढ़, झारखंड तथा ओड़िशा जैसे गरीब राज्य भी। इस घोर उदासीनता के आरोपों का जवाब देने के लिए संबंधित राज्यों के मुख्य सचिवों को सर्वोच्च न्यायालय ने तलब किया है।प्रतिबद्धता पर संदेहहालांकि प्राथमिक जिम्मेदारी राज्य सरकारों की है, पर बच्चों के प्रति केंद्र सरकार की प्रतिबद्धता भी संदेहास्पद है। देखिए, महत्त्वपूर्ण मदों में केंद्र सरकार कितना कम खर्च करती है:कुल व्यय के अनुपात (प्रतिशत) में2013-14 2014-15 2015-16 2016-17मानव संसाधन विकास मंत्रालय4.57 4.24 3.75 3.65स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय1.89 1.90 1.90 1.97महिला एवं बाल विकास मंत्रालय1.16 1.11 0.96 0.88 कुल 7.62 7.25 6.61 6.502013-14 में खर्च का जो स्तर था अगर बाद के वर्षों में सरकार ने उसे बनाए रखा होता, तो पिछले तीन साल में 6155 करोड़ रुपए, 18,087 करोड़ रुपए और 22,561 करोड़ रुपए की अतिरिक्तराशि खर्च की गई होती।देश के बच्चों की देखभाल में सरकारें, खासकर राज्य सरकारें, एक के बाद एक, बुरी तरह नाकाम रही हैं। मेरे

खयाल से, यह मसला, कानून व्यवस्था केबाद, सरकार के लिए सबसे महत्त्व का मसला है। उपेक्षा के चलते ही, हमारे मानव संसाधन की गुणवत्ता बेहद शोचनीय है। आर्थिक वृद्धि से लेकर राष्ट्रीय सुरक्षा तक, हर चीज हमारी मानव पूंजी की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। जिस जनसंख्यात्मक शक्ति की हम डींग हांकते हैं, उसके एक जनसंख्यात्मक बोझ में बदल जाने का खतरा है।तमिल में इस आशय की एक कहावत है कि 'बच्चे और देवता वहां रहते हैं जहां उनकी पूजा होती है।' यह अफसोसनाक है कि हम देवताओं की पूजा भले करते हैं, मगर एक राष्ट्र के तौर पर, बच्चों के प्रति हमारा व्यवहार घोर उपेक्षा का है।

पी. चिदंबरम

Date: 26-03-17

उदारवाद बनाम कट्टरपंथ

सामान्य व्यक्ति और बौद्धिकों की विश्व दृष्टि में अपाट खाई नजर आ रही है। हो सकता है कि यह खाई मुझे ज्यादा गहरी लग रही हो, पर जमीन का टूटना और धंस जाना सभी को दिख रहा है। कुछ समय पहले तक हम एक समतल पर खड़े थे और लगभग एक तरह से जनसंवाद में जुटे थे। कई मानकों पर सहमति थी या कहें कि हमने कुछ मूल मानकों को अपनी सामाजिक और राजनीतिक जीवन शैली का स्वाभाविक हिस्सा-सा मान लिया था। हिंदुस्तान में ही नहीं, पूरी दुनिया में एक प्रकार का तंत्र और सोच हावी थी और वह हमारे आचार-विचार में इस कदर घुल-मिल गई थी कि उसका हर विघटन अप्राकृतिक-सा लगता था।पिछले कई सालों से, खासकर पिछले एक दशक में, अकाट्य जीवन सत्यों को चुनौती मिलने लगी थी। 1940 से लेकर लगभग 2000 तक लोकतंत्र, मानवाधिकार, उदारवादी मूल्य, सहिष्णुता, वैश्वीकरण, पश्चिमीकरण वगैरह हमारे सार्वजनिक संभाषण का मूलभूत हिस्सा थे। शुरुआती दशकों में इन सभी मूल्यों के चमकते सितारे ईरान और अफगानिस्तान थे। तेहरान, लंदन और न्यूयॉर्क से कम नहीं था और काबुल को पूरब का पेरिस कहा जाता था। 1979 में तेहरान के पहलवी राजवंश को इस्लामिक क्रांति ने सत्ता विहीन कर दिया और यकायक तरक्की पसंद ईरान कट्टरवादी इस्लाम के साथ हो गया।अफगानिस्तान में भी कुछ ऐसा ही हुआ, 1979 में। काबुल में कम्युनिस्ट सरकार थी और उसकी खिलाफत में मुसलिम गुरिल्ला मूवमेंट शुरू हुआ। सोवियत रूस की फौज कम्युनिस्ट सरकार की मदद के लिए अफगानिस्तान में घुसी और फिर वहीं फंस गई। 1992 तक यह सिलसिला चलता रहा और फिर इस्लामिक कट्टरपंथी काबिज हो गए। पूरब का पेरिस तालिबानी काबुल बन गया।

ज्यादातर विद्वानों ने इन दोनों परिवर्तनों को जिओ पॉलिटिक्स के नजरिए से देखा, जिसमें अमेरिका और सोवियत रूस के बीच चल रहे शीतयुद्ध की बड़ी हिस्सेदारी थी। यह कहना काफी हद तक ठीक भी था, क्योंकि दोनों महाशक्तियां अपने बल प्रदर्शन की होड़ में लगी हुई थीं। तेहरान अमेरिका के पूरे प्रभाव में था और अफगानिस्तान पर रूस का वर्चस्व था। पर दोनों देशों में आधुनिक विचार और जीवन शैली मान्य प्रतीत होती थी। किसी को भी आभास नहीं था कि जमीनी स्तर पर दोनों देश बदल रहे हैं। ईरानी क्रांति ने तथाकथित उदारवादी पाश्चात्य मूल्यों को एक झटके में दरकिनार कर कट्टरपंथी इस्लामिक चोले को अपना लिया। अफगानिस्तान में भी ऐसा ही हुआ। समाज एक दिशा और दशा से ठीक उलट दिशा और दशा में परिवर्तित हो गया। उदारवाद और कट्टरवाद के बीच संवाद की कोई गुंजाइश ही नहीं रही। धीरे-धीरे दुनिया के कई बड़े हिस्से बदलने लगे। पाकिस्तान इनमें पहला था। फिर 2000 आते-आते रूस से अलग हुए कई देशों में मजहबी संघर्ष हुआ, जो खाड़ी के देशों से लेकर अफ्रीका के इलाको में फैल गया। इसके साथ आतंकवाद का जन्म हुआ और वह पल भर में जवान भी हो गया। 11 सितंबर, 2001 को आतंकवाद बड़े धमाके के साथ अमेरिका भी पहुंच गया। सारी दुनिया अब भयभीत थी। उदारवाद के परखचे उड़ गए थे। पर बौद्धिकों को ऐसा नहीं लगा। वे अपने थिंक टैंकों में मेढक बने रहे। देश बदल रहे थे, लोगों की अपेक्षाएं बदल रही थीं, मनोवृत्तियां तब्दील

हो रही थीं और माहौल गहरा रहा था, मगर सामाजिक, राजनीतिक विचारक इन परिस्थितियों से निपटने के लिए अपने को तैयार नहीं कर पाए। वे आगे-पीछे सब ठीक हो जाएगा की माला जपते रहे और अपनी पुरानी घुट्टी प्रसाद के रूप में बांटने में जुटे रहे। उनको इस बात का बिल्कुल एहसास नहीं था कि सन 2000 में 1960 की घुट्टी की तासीर खत्म हो चुकी थी।

2014 में समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष भारत में दक्षिणपंथ का प्रचंड उदय और फिर अमेरिका जैसे उदारवादी देश में डोनाल्ड ट्रंप की ताजपोशी (2016) से साबित हो गया है कि बौद्धिकों के प्रवचन और आम आदमी की सोच में कोई तालमेल नहीं है। एक तरह से देखा जाए तो बुद्धिजीवियों और उदारवादी विचारकों के पैरों तले की जमीन कब खिसक गई, पता ही नहीं चला। वोट के जरिए हो या फिर आतंकवाद पर खामोश समर्थन के जरिए, बहुत हद तक कट्टरवाद का प्रभुत्व हमारे सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर पसर रहा है। इसके कई नाम और रंग है- राष्ट्रवाद, विकासवाद आदि, पर लौट-फिर कर बात एक ही है।उदारवादी बुद्धिजीवी सकपकाए हुए हैं। कुछ तो दहशत में हैं। उनके जीवन काल में चली आ रही और पूर्ण स्थापित तथाकथित वामपंथी उदारवादी वैचारिक शैली का तख्ता पलट हो गया है। वैसे भी जब वे विश्व इतिहास पर नजर डालते हैं तो देखते हैं कि उनके जैसे उदारवाद की सत्ता हमेशा से अल्पकालीन रही है। कट्टरपंथ का बोलबाला इतिहास में लगातार बना रहा है, चाहे वह रोम और ग्रीस का राष्ट्रवाद हो या फिर क्रिश्चियन कूरसेड और इस्लामिक खलीफाशाही। ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, पुर्तगाल, फ्रांस, रूस आदि भी राष्ट्रवाद को बुलंद करके ही आगे बढ़े थे और फिर उदारवादी हो गए। उनका आज वही हाल है, जो हिंदुस्तान में सम्राट अशोक के उदारवाद समर्पण के बाद हुआ था। आशोक के साथ राजवंश खत्म हो गया था और भारत का स्वर्ण काल भी। उसके बाद आने वाले चंद्रगुप्त मौर्य ने राष्ट्रवाद की नींव पर फिर से साम्राज्य खड़ा किया।

पर इन तथ्यों से परे यह भी सत्य है कि देश बदल रहे हैं, उनमें मंथन चल रहा है। एक तरफ अनजाने भय से आम लोग कट्टरपंथ स्वीकार कर रहे हैं, तो दूसरी तरफ उदारवाद के 'अस्वाभाविक', संस्थागत तौर-तरीकों से भी परेशान होकर अपनी आदमीयत की सत्यता के हट गए हैं। अमेरिका में समलैंगिक विवाह से लेकर उदारवादियों की वैचारिक और सामूहिक भ्रष्टता चुनावी मुद्दे बन चुके हैं। डोनाल्ड ट्रंप जब 'फेक न्यूज' कहते हैं तो जन साधारण की चुप्पी को जुबान देते हैं, जो उदारवाद को जाली व्यवस्था मानते हैं। दूसरी तरफ वे लोग हैं, जिनको लोकतांत्रिक प्रक्रिया की आड़ में कट्टरवाद अस्वीकार्य है। उनके अनुसार लोकतंत्र और कट्टरवाद अलग-अलग चीजें हैं। जो कट्टरवादी है वह लोकतांत्रिक नहीं हो सकता। यह एक तरह से सच भी है, क्योंकि लोकतंत्र में कोई भी विचार या कृत्य किसी पर थोपा नहीं जा सकता। पर ऐसा हो रहा है। जन-सत्ता का धर्म या अर्थ ने नाम पर अपहरण हमारी आखों के सामने दिनदहाड़े हो रहा है।

वास्तव में आम आदमी लोकतंत्र के प्रति समर्पित है, उदारवाद उसकी मूल प्रवृत्ति है। जो लोग कट्टरपंथी नहीं हैं और लोकतंत्र के प्रति कटिबद्ध हैं, उन्हें इस प्रवृत्ति को सहज ढंग से कुरेदना होगा, उसको फिर से प्रवाहित करना होगा। उनके लिए जरूरी है कि वे जनमानस से फिर से जुड़ें और उसकी असुरक्षा को शांत कर मानवीय मूल्यों और भावों से जोड़ें। यह एक बड़ी चुनौती है, जो सीधे मानवता के भविष्य पर असर डालती है।कट्टरवाद से आमने-सामने का संघर्ष व्यर्थ है। उसका बाहुबल और उनके नारे की ललकार हमेशा भारी पड़ेगी, क्योंकि जोश अमूमन होश खो देता है। उदारवाद होश का वाद है, आदमियत का वाद है। इसीलिए विश्वास से कहा जा सकता है कि आज जो भी है, वह आज ही है। कल उदारवाद का ही प्रभुत्व होगा, क्योंकि उदारवाद ही मानव प्रकृति के अनुसार है, सहज है और हमारी-आपकी की दशा और दिशा सुधारने में सक्षम है। यह सबसे अच्छा और स्वस्थ लोकतांत्रिक तरीका भी है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 26-03-17

गलियारा दरअसल भारत-घेराव है

करीब तीन हजार किमी लंबे चीन और पाकिस्तान के आर्थिक गलियारे को लेकर भारत और पाकिस्तान में खूब विरोध हो रहा है। यह 46 अरब डॉलर की संपर्क योजना है जो ग्वादर बंदरगाह को दक्षिण-पश्चिम पाकिस्तान के साथ-साथ सुदूर पश्चिम चीन के झिंजियांग प्रांत को जोड़ेगा। यह बीजिंग के उस वृद्ध योजना "वन बेल्ट, वन रोड' का ही हिस्सा है जिसके जरिये चीन मध्य एशिया और रूस होते हुए यूरोप के साथ जुड़ना चाहता है। चीन को इसके माध्यम से कई राष्ट्रीय हितों को साधना है। पहला, एशिया में भारत को संतुलित करने के लिए पाकिस्तान को साधना उसकी पारंपरिक नीति का हिस्सा रहा है। अब वह इस गलियारे के माध्यम से इस्लामाबाद को विकास का सपना दिखाकर रिझाने की सफल कोशिश कर रहा है। दूसरे, वह अपने व्यापारिक हितों का विस्तार समुद्री रास्ते के बजाय जमीनी रास्तों से करना चाहता है क्योंकि समुद्री रास्तों पर अमेरिका व पश्चिमी देशों का दबदबा है।दरअसल, वह गलियारा रणनीतिक तौर पर अहम और विवादित माने जाने वाले कश्मीर के गिलगिट-बाल्टिस्तान से होकर गुजर रहा है, जिसका विरोध वहां के स्थानीय लोग कर रहे हैं। ब्रसल्स में हुए यूरोपीय संसद, जिसमें सिंध, ब्लूचिस्तान और गिलगिट बाल्टिस्तान की आजादी के लिए आवाज उठाने वाले प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था, में भी इस गलियारे का भारी विरोध हुआ। आम राय थी कि इस गलियारे से सिर्फ चीन और पंजाब के नागरिकों को फायदा होगा। ब्लूची प्रतिनिधि मेहरान ब्लूच ने इस गलियारे को अवैध ठहराया और कहा कि इससे हमारी संस्कृति और पहचान खत्म हो जाएगी। विश्व सिंध कांग्रेस के चेयरपर्सन रूबीना ग्रीवुड भी आशंकित हैं कि चीन यहां के संसाधनों की लूटपाट करेगा। गिलगिट-बाल्टिस्तान थिंकर्स फोरम के अध्यक्ष वजाहत हसन की भी यही राय है। भारत पर इस योजना में शामिल होने के लिए चीन-पाकिस्तान दबाव डाल रहे हैं। चीन भारत पर दबाव बनाने के लिए रूस से भी सहयोग लेने की कोशिश कर रहा है। लेकिन पीओके भारत का अभिन्न हिस्सा है। ऐसे में वह इस परियोजना में कैसे शामिल हो सकता है? उसे इस बात की भी आशंका है कि चीन-पाकिस्तान सैनिक कार्रवाई के लिए इस गलियारे का इस्तेमाल कर सकते हैं। इस आशंका को खारिज भी नहीं किया जा सकता। चीन अपनी संप्रभुता के मामले में जरूरत से ज्यादा संवेदनशील रहता है, लेकिन दूसरे की परवाह नहीं करता। हालांकि चीन दावा करता है कि भारत को चिंतित होने की जरूरत नहीं है, क्योंकि यह व्यापारिक-वाणिज्यिक मार्ग है। फिर भी यह स्वाभाविक है कि भारत जिस क्षेत्र पर अपना दावा करता आया है, वहां चीन-पाकिस्तान की संयुक्त योजना में कैसे शामिल हो सकता है! नेपाल ने चीन की प्रस्तावित "वन बेल्ट, वन रोड' में शामिल होने का संकेत दिया है। अगर इसका कोई नियंतण्र स्वरूप उभरता है, रूस, मध्य एशिया के देश भी यदि इसमें शामिल होते हैं तो भारत का विरोध कम हो सकता है। यदि चीन भारत को यह आस्त करे कि इसका सैनिक उपयोग नहीं होगा और मसूद अजहर, न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप आदि मुद्दों पर वह भारतीय हितों का ध्यान रखते विास जमाता है तो भारत भी इस परलचीला रुख अपना सकता है।

डॉ. दिलीप चौबे